वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 358
ISBN 978-93-82071-36-5

णमोकार महामंत्र महिमा

–लेखिका –

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अन्तर्गत कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी के प्रथम पीठाधीश पदारोहण के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	मगशिर कृ. दशमी, 8 दिसम्बर 2012	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

पीठाधीश की कलम से.....

पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी ने बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दी में साहित्य सृजन की अविरल धारा को प्रवाहित करके जैनधर्म की अद्भुत प्रभावना की है तथा जैन साहित्य जगत पर भी अनंत उपकार किये हैं। विशेषरूप से आपकी लेखनी से प्रसूत पद्य साहित्य अर्थात् पूजा-विधान से जन-जन को अमोघ शस्त्र के रूप में भक्ति का मार्ग प्राप्त हुआ है।

पूज्य माताजी द्वारा लिखित साहित्य को सतत प्रकाशित करने के लिए पूज्य माताजी की ही पुण्य प्रेरणा से सन् 1972 में स्थापित दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के अन्तर्गत वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला की भी स्थापना की गई, तब से लगातार इस ग्रंथमाला द्वारा साहित्य प्रकाशन का कार्य किया जा रहा है। जहाँ इस ग्रंथमाला ने लाखों श्रावकों एवं श्रद्धालु भक्तों को ज्ञान का लाभ प्रदान किया है, वहीं विशिष्ट एवं गुणवत्तापूर्ण प्रकाशन के माध्यम से इस ग्रंथमाला को भी समाज के मध्य एक विशिष्ट ख्याति प्राप्त हुई है।

इस ग्रंथमाला से जहाँ पूज्य माताजी द्वारा टीकाकृत षट्खण्डागम जैसे महान सिद्धान्त ग्रंथों तथा नियमसार, समयसार, गोम्मटसार, अष्टसहस्री, कातंत्र व्याकरण आदि जैसे मूल आगम ग्रंथों का प्रकाशन होता है, वहीं मुख्यतः पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी व प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चंदनामती माताजी द्वारा लिखित विभिन्न बड़े-छोटे पूजा-मण्डल विधान आदि का प्रकाशन भी समाज के लिए विशेष मांग हेतु बना रहता है। आज हम इस ग्रंथमाला को अत्यन्त सौभाग्यशाली मानते हैं, जिसके माध्यम से प्रकाशित हो रहे सत् साहित्य का वर्ष भर पूरे 365 दिन भारत के कहीं न कहीं, किसी न किसी मंदिर में मण्डल विधान या साहित्य वितरण आदि के लिए मांग आती रहती है और जैनधर्म व भक्तिमार्ग की प्रभावना में यह ग्रंथमाला नित्य ही तत्पर रहती है।

विशेषरूप से इस ग्रंथमाला द्वारा समाज को लागत मूल्य से भी कम राशि पर साहित्य उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता है, जिससे कि सुविधापूर्वक जन-जन तक साहित्य पहुँच सके। आगे भी इसी प्रकार यह ग्रंथमाला अपना दायित्व निभाती रहे, यही भावना है। वर्तमान में प्रकाशित हो रही इस पुस्तक के माध्यम से आप सभी श्रावकजन विशेष धर्मलाभ को प्राप्त करें तथा जैनधर्म का यह ज्ञान आपके सम्यक्त्व को दृढ़ करने में सदा सहकारी बनकर मोक्षमार्ग को प्रशस्त करे, सभी भक्तों को मेरी यही शुभकामनाएं एवं मंगल आशीर्वाद है।

-कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

सम्पादकीय

–जीवन प्रकाश जैन, प्रबंध सम्पादक

जन्म लेने के बाद मुख से बोलने का समय आते ही महामंत्र का उच्चारण करना मैंने भी सीखा है तथा माता-पिता से सदा यही शिक्षा पाई है कि सुख-दुःख की किसी भी परिस्थिति में णमोकार मंत्र को जपते रहना है, उसे कभी भी छोड़ना नहीं है। इसका कारण यही है कि णमोकार महामंत्र में अचिन्त्य शक्ति है।

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी जैसी महान गुरु माँ के पास आकर भी सदैव मैंने णमोकार महामंत्र का सातिशय प्रभाव पाया है। यहाँ तो ''णमोकार महामंत्र बैंक'' का नया ही प्रारूप देखकर हृदय में सुखद अनुभूति हुई। उसमें प्रतिवर्ष सैकड़ों भक्तगण महत्त्वपूर्ण है। मैंने अनेकों मंत्र लेखकों के मुख से णमोकारमंत्र लेखन का चमत्कार सुना है। अभी कुछ ही दिन पूर्व इंदौर की एक अम्मा जी ने बड़े भावुक होते हुए बताया कि मेरे साथ दो बार चमत्कार हुआ है कि मैं घर में जहाँ पर बैठी णमोकार मंत्र लिख रही थी, वहाँ रखे गैस सिलेण्डर में आग लग गई, किन्तु किसी की रंचमात्र भी हानि नहीं हुई, यह सब मेरे णमोकार लेखन का ही प्रभाव था.....इत्यादि।

पूज्य माताजी तो अपने प्रवचनों में सदैव कहती हैं कि प्रत्येक जैन श्रावकों को अपने घर, दुकान, ऑफिस, फैक्ट्री आदि सभी जगह प्रवेश द्वार पर णमोकार मंत्र लिखवाना चाहिए, ताकि वहाँ किसी प्रकार के अनिष्ट अथवा हानि की संभावना न रहे।

आशा है इस पुस्तक से सभी भक्तगण णमोकार महामंत्र के प्रति पूर्ण श्रद्धा का भाव मन में प्रगट करेंगे।

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर के इस वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला से इस प्रकार के सत्साहित्य का प्रकाशन करके हम गौरव का अनुभव करते हैं और पूज्य ज्ञानमती माताजी के लिए भगवान जिनेन्द्र से प्रार्थना करते हैं कि वे दीर्घकाल तक स्वस्थ रहकर हमें इसी प्रकार की लोकोपयोगी पुस्तकें प्रदान करती रहें। उन गुरु माँ के श्रीचरणों में शत-शत नमन।

प्रस्तावना

–आर्यिका चन्दनामती

''णमोकार महामंत्र महिमा'' नाम की इस पुस्तक में अनादिनिधन, अपराजित और शाश्वत मंत्र की अचिन्त्य शक्ति का वर्णन पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणिश्री ज्ञानमती माताजी ने किया है।

श्री उमास्वामी आचार्य द्वारा रचित ''णमोकार मंत्र माहात्म्य'' विष्लिष्यन् घनकर्म.....इत्यादि स्तोत्र पाठ इसमें बहुत ही महत्वपूर्ण पठनीय है। पूज्य माताजी की प्रेरणा से मैंने इसका हिन्दी में पद्यानुवाद किया है, जिसके पढ़ने से स्तोत्र का पूरा भाव समझ में आ जाता है।

इस पुस्तक में ''णमोकार मंत्र का अर्थ एवं महिमा'' का वर्णन बहुत सरल ढंग से प्रस्तुत किया गया है, जिसे पढ़कर णमोकार मंत्र के अर्थ के साथ-साथ पाँचों परमेष्ठियों का स्वरूप, उनके गुणआदि का ज्ञान होगा, साथ ही णमोकार मंत्र में अरिहंतों को सिद्धों से पूर्व में नमस्कार क्यों किया है, इसका आगमिक एवं व्यवहारिक पक्ष प्रदर्शित किया है।

इस महामंत्र में 5 पद हैं, 35 अक्षर हैं, 58 मात्राएँ हैं तथा 34 स्वर और 30 व्यंजन मिलाकर मूलवर्ण की संख्या 64 आती है जो 64 ऋद्धि के समान अतिशयकारी हैं। इन 64 मूलवर्णों को लेकर जो बीस संख्या प्रमाण श्रुतज्ञान के अक्षर निकाले हैं, उसका पृ. नं. 17 पर अच्छा पठनीय विषय है। णमोकार महामंत्र अनादिसिद्धमंत्र है, यह अपवित्र या पवित्र सभी अवस्थाओं में चिन्तनीय एवं पठनीय माना गया है। इसका अपमान करने वाले सुभौमचक्रवर्ती ने जहाँ नरकगति के महादुःखों को प्राप्त किया, वहीं इसे विनयपूर्वक पढ़ने और सुनने वालों पशुओं तक के द्वारा भी सद्गति प्राप्त करने के अनेकानेक उदाहरण शास्त्रों में भरे पड़े हैं। इसीलिए इस मंत्र के विषय में कहा है–

एसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

अर्थात् यह पंचनमस्कार मंत्र समस्त पापों का नाश करने वाला है और सभी मंगलों में पहला मंगल है।

इन सभी विषयों का इस पुस्तक में सुन्दर वर्णन है। अंत में इसमें णमोकार मंत्र की पूजन एवं चालीसा भी है अतः इस सर्वांगीण पुस्तक का स्वाध्याय करके णमोकार महामंत्र पर खूब श्रद्धा रखते हुए आप सभी उसके अप्रतिम फल को प्राप्त करें, यही मंगल कामना है।

पुस्तक की लेखिका, परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान–टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि–आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)
जाति–अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र**–गोयल, **नाम**–कु. मैना
माता-पिता–श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत–ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन
क्षुल्लिका दीक्षा–चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम– क्षुल्लिका वीरमती
आर्यिका दीक्षा–वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।
साहित्यिक कृतित्व–अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका।
डी.लिट्. की मानद् उपाधि–सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।
तीर्थ निर्माण प्रेरणा–हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा- भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।
महोत्सव प्रेरणा–पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डलविधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभादेवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**
शैक्षणिक प्रेरणा–'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।
रथ प्रवर्तन प्रेरणा–जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

–कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 से हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं–

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है–कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना, तीन लोक रचना, नवग्रहशांति जिनमंदिर, चौबीस मंदिर एवं श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग प्रतिमाओं की स्थापना ।

5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।

6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली नई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

12. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित गणिनी ज्ञानमती हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं भौतिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, रोहतावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।

णमोकार महामंत्र महिमा

णमो अरिहंताणं	अर्हंतों को नमस्कार हो।
णमो सिद्धाणं	सिद्धों को नमस्कार हो।
णमो आइरियाणं	आचार्यों को नमस्कार हो।
णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को नमस्कार हो।
णमो लोए सव्वसाहूणं	लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

इस मन्त्र में अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन पाँच परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है।

णमोकार मंत्र का माहात्म्य

(श्री उमास्वामि आचार्यविरचित)

हिन्दी पद्यानुवाद-आर्यिका चन्दनामती

विष्लिष्यन् घनकर्मराशिमशनिः संसारभूमीभृतः।
स्वर्निर्वाणपुरप्रवेशगमने, निःप्रत्यवायः सतां।।
मोहांधावटसंकटे निपततां, हस्तावलम्बोर्हतां।
पायान्नः स चराचरस्य जगतः संजीवनं मन्त्रराट्।।१।।

(१)

णमोकार यह मंत्रराज, घनकर्म समूह हटाता है।
यह संसार महापर्वत, भेदन में वज्र कहाता है।।
सत्पुरुषों को स्वर्ग मोक्ष दे, संकट दूर भगाता है।
मोह महान्धकूप में डूबे, को अवलम्बन दाता है।।

दोहा — **जीवनदाता मंत्र यह, करे जगत उद्धार।**
मेरी भी रक्षा करो, णमोकार सुखकार।।

अर्थ — अर्हन्त आदि पंचपरमेष्ठियों का वाचक णमोकार मंत्रराज ज्ञानावरण आदि कर्म समूह को आत्मा से हटाने वाला है, अतएव संसाररूपी पर्वत को तोड़ने के लिए वज्र के समान है। सत्पुरुषों को स्वर्ग-मोक्ष जाने में सहायक है, मोहरूपी अंधकूप में गिरे हुए प्राणियों को उससे बाहर निकालने के लिए हस्तावलम्बन (हाथ के सहारे) के समान है, चर (त्रस) और अचर (पृथ्वी, वनस्पति आदि स्थावर) जगत को जीवन दाता है, ऐसा यह णमोकार महामंत्र हमारी रक्षा करे।

एकत्र पंचगुरुमंत्रपदाक्षराणि, विश्वत्रयं-पुनरनन्तगुणं परत्र।
यो धारयेत्किल तुलानुगतं तथापि, वंदे महागुरुतरं परमेष्ठिमन्त्रं।।२।।

(२)

एक तराजू के पलड़े पर, णमोकारपद मंत्र रखो।
लोकत्रय के गुण अनन्त, पुंजों को भी इक ओर रखो।।
परमेष्ठी के मंत्रों का, फिर भी पलड़ा भारी होगा।
गौरवशाली महामंत्र को, नमन करूँ शिवसुख देगा।।

*दोहा —***णमोकार यह मंत्र है, जग में गुरुतर मंत्र।**
नमूँ इसे सर्वत्र मैं, पाऊँ सौख्य स्वतंत्र।।

अर्थ — यदि कोई व्यक्ति तराजू में एक ओर पंचपरमेष्ठी के णमोकार मंत्र के पद—अक्षरों को और दूसरी ओर अनंत गुणात्मक तीन लोकों को रखकर तुलना करे, तो भी वह णमोकार मंत्र को अधिक वजनदान (भारी) अनुभव करेगा, उस महान गौरवशाली णमोकार मंत्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनंता, उत्सर्पिणीप्रभृतयः प्रययुर्विवर्त्ताः।
तेष्वप्ययं परतरं प्रथितं पुरापि, लब्ध्वैनमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः।।३।।

(३)

उत्सर्पिणि अवसर्पिणी के, सुषमादिक काल अनन्त रहे।
णमोकार यह महामंत्र ही, हुआ प्रसिद्ध सदा उनमें।।
काल अनादी से अनन्त तक, मंत्रराज यह शाश्वत है।
भव से पार मुक्ति हेतू, वंदन कर लूँ भव सार्थक है।।

दोहा —**अपराजित यह मंत्र है, पंचपदों से युक्त।**
अंजन तस्कर हो गया, इसके बल पर मुक्त।।

अर्थ — उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि काल के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्त युग पहले व्यतीत हो चुके हैं, उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ।

उत्तिष्ठन्निपतञ्चलन्नपि धरा-पीठे लुठन् वा स्मरेत्-
जाग्रद्वा प्रहसन् स्वपन्नपि वने विभ्यन्निषीदन्नपि।
गच्छन् वर्त्मनि वेश्मनि प्रतिपदं, कर्म प्रकुर्वन्नपि
यः पंचप्रभुमंत्रमेकमनिशं किं तस्य नो वांछितम्।।४।।

(४)

जो नर इस णमोकार मंत्र को, सदा-सदा स्मरण करे।
उठते-गिरते-चलते-पृथ्वी, पर भी लुढ़कते मन में धरे।।
जगते-सोते-हंसते अथवा, वन में भी जब डर लगता।
मंत्रराज को जपने से हर, मन वांछित फल है मिलता।।

दोहा —**मूलमंत्र जिनधर्म का, पढ़ो करो नित जाप।**
देखो ग्वाला भी हुआ, सेठ सुदर्शनराज।।

अर्थ — जो व्यक्ति उठते हुए, गिरते हुए, चलते हुए, पृथ्वी तल पर लोटते— लुढ़कते हुए, जागते हुए, सोते हुए, हंसते हुए, वन में डरते हुए, बैठते, मार्ग में चलते, घर में रहते व कोई कार्य करते हुए पग-पग पर सदा णमोकार मंत्र का

स्मरण करता है, उसकी सभी इच्छा पूर्ण होती हैं।

संग्रामसागरकरीन्द्रभुजंगसिंह-दुर्व्याधिवन्हिरिपुबंधनसंभवानि।
चौरग्रहभ्रमनिशाचरशाकिनीनां, नश्यन्ति पंचपरमेष्ठिपदैर्भयानि।।५।।

(५)

युद्धक्षेत्र में या समुद्र में, मृत्यु सामने दिखती हो।
हाथी-सर्प-सिंह-दुर्व्याधि, तन में या अग्नी भी हो।।
शत्रु तथा बंधन एवं, चौरादि दुष्ट ग्रह दुख देते।
शाकिनि डाकिनि आदिकभय, परमेष्ठि पाँच सब हर लेते।।

दोहा —**इसी मंत्र के श्रवण से, श्वान हुआ यक्षेन्द्र।**
पठन श्रवण और नमन से, निज मन करो पवित्र।।

अर्थ — णमोकार मंत्र जपने से युद्ध, समुद्र, गजराज (हाथी) सर्प, सिंह, भयानक रोग, अग्नि, शत्रु, बंधन (जेल आदि) के तथा चोर, दुष्टग्रह, राक्षस चुड़ैल आदि का भय दूर हो जाता है।

यो लक्षं जिनलक्षबद्धहृदयः, सुव्यक्तवर्णक्रमम्।
श्रद्धावान्विजितेन्द्रियो भवहरं, मन्त्रं जपेच्छ्रावकः।।
पुष्पैः श्वेतसुगन्धिभिः सुविधिना, लक्षप्रमाणैरमुम्।
यः संपूजयते स विश्वमहितस्तीर्थाधिनाथो भवेत्।।६।।

(६)

जो श्रद्धालु जितेन्द्रिय श्रावक मन में प्रभु सुमिरन करके।
शुद्ध शब्द उच्चारणपूर्वक णमोकार का जप करते।।
एक लक्ष मंत्रों को जपकर पुष्प सफेद चढ़ाते हैं।
णमोकार पूजन से वे तीर्थाधिनाथ बन जाते हैं।।

दोहा —**श्वेत सुगंधित पुष्प ले, पूजूँ मंत्र महान।**
जगत्पूज्य पद प्राप्त कर, बन जाऊँ भगवान।।

अर्थ — जो जितेन्द्रिय श्रद्धालु श्रावक हृदय में जिनेन्द्र भगवान का लक्ष्य रखकर स्पष्ट शुद्ध उच्चारण सहित णमोकार मंत्र को एक लाख बार जपता है तथा विधिपूर्वक एक लाख सुगंधित सफेद फूलों से णमोकार मंत्र को पूजता

है। अर्थात् णमोकार मंत्र शुद्ध स्पष्ट पढ़कर सुगंधित सफेद फूल चढ़ाता जाता है, वह जगत्पूज्य तीर्थंकर पद प्राप्त करता है।

इन्दुर्दिवाकरतया रविरिंदुरूपः, पातालमंबरमिला सुरलोक एव।
किं जल्पितेन बहुना भुवनत्रयेपि, यन्नाम तन्न विषमं च समं च तस्मात्।।७।।

(७)

णमोकार के मंत्र नाम से, चन्द्र सूर्य सम बन सकता।
शशि सम सूरज बने तथा, पाताल भी नभ सम बन सकता।।
धरती स्वर्ग समान सुखद बन, इच्छित फल दे सकती है।
और कहें क्या ? तीन लोक की, हर वस्तू मिल सकती है।।

दोहा —**सुखदायक इस मंत्र से, मिलते सभी पदार्थ।**
दुख भी सुख में बदलते, प्राणी होंय कृतार्थ।।

अर्थ—णमोकार मंत्र के प्रभाव से चन्द्रमा सूर्य के समान, सूर्य चन्द्रमा की तरह, पाताल आकाश के समान और पृथ्वी स्वर्ग के समान हो जाती है। बहुत क्या कहें ? तीन लोक में ऐसी कोई भी विषम (दुखदायक—अनिष्ट) वस्तु नहीं है जो णमोकार मंत्र के प्रभाव से सम (सुखदायक—इष्ट) न हो सके। अर्थात् सभी अनिष्ट वस्तुएँ णमोकार मंत्र के प्रभाव से इष्टरूप परिवर्तित हो सकती हैं।

जग्मुर्जिनास्तदपवर्गपदं तदैव, विश्वं वराकमिदमत्र कथं विनास्मान्।
तत्सर्वलोकभुवनोद्धरणाय धीरै-र्मंत्रात्मकं निजवपुर्निहितं तदत्र।।८।।

(८)

धीर वीर जिनवर ने तब ही, शीघ्र मुक्ति पद प्राप्त किया।
जब निज तन को मंत्ररूप कर, आत्म तत्त्व में रमा लिया।।
त्रिभुवन के उद्धार हेतु जो, परमेष्ठी का ध्यान करें।
वे ही जग में क्रम-क्रम से, परमेष्ठी बन विश्राम करें।।

दोहा —**परमेष्ठी पद प्राप्ति का, यही मूल आधार।**
णमोकार का ध्यान ही, करता भव से पार।।

अर्थ—कषाय विजेता योगी तब ही मुक्ति पद प्राप्त कर सके, जबकि उन धीर वीरों ने समस्त जगत का उद्धार करने के लिए अपना शरीर मंत्ररूप कर

लिया। इसके बिना बेचारा संसार (संसारी जीव समूह) किस तरह कल्याण प्राप्त करता। यानी साधु आदि परमेष्ठी णमोकार मंत्र के ध्यान से मुक्त होते हैं तथा उनका पाँच परमेष्ठीरूप होना इस णमोकार मंत्र का मूल आधार है।

हिंसाविाननृतप्रियः परधनं हर्त्ता परस्त्रीरतः।
किंचान्येष्वपि लोकगर्हितमतिः पापेषु गाढोद्यतः।।
मन्त्रेशं सपदि स्मरेच्च सततं, प्राणात्यये सर्वदा।
दुःकर्माहितदुर्गतिक्षतचयः स्वर्गी भवेन्मानवः।।९।।

(९)

जो नर हिंसा झूठ व चोरी, तथा परस्त्री में रत है।
लोक निंद्य होकर महान, पापों में रहता तत्पर है।।
वह भी उन्हें तज यदी कदाचित्, मंत्रराज सुमिरन कर ले।
तो कुकर्म से अर्जित दुर्गति, बंध बदल दिवगति वर ले।।

दोहा —**णमोकार मंत्रेश यह, कुगति निवारक जान।**
सुगति प्रदाता है इसे, शत शत करो प्रणाम।।

अर्थ—जो मनुष्य हिंसा, असत्य भाषण, चोरी, परस्त्री सेवन करने वाला हो तथा लोकनिन्दित होकर अन्य महान पाप कर्मों में तत्पर रहता हो, वह भी यदि (पापों को छोड़कर) निरन्तर—सदा णमोकार मंत्र का स्मरण करता रहे, तो कुकर्मों से उपार्जित अपनी नरक आदि दुर्गति को बदल कर मरने पर देवगति प्राप्त करता है।

अयं धर्मः श्रेयान्नयमपि च देवो जिनपति-
र्व्रतं चैष श्रीमान्नयमपि तपः सर्वफलदं।
किमन्यैर्वाग्जालैर्बहुभिरपि संसारजलधौ,
नमस्कारात्तत्किं यदिह शुभरूपो न भवति।।१०।।

(१०)

नमस्कार यह मंत्र जगत में, सर्व हितैषी धर्म कहा।
यही मंत्र जिनरूप व व्रतमय फलदायक शिवशर्म कहा।।
अधिक कथन से क्या मतलब है, केवल सार समझ लीजे।
इसी मंत्र की महिमा से हर अशुभ कार्य भी शुभ कीजे।।

दोहा —**है अचिन्त्य महिमामयी, णमोकार यह मंत्र।**
इसको जपते ही मिलें, भौतिक सौख्य असंख्य।।

अर्थ—यह पंचनमस्कार मंत्र ही कल्याणकारी धर्म है, यह मंत्र ही जिनेन्द्र भगवानरूप है, यह मंत्र ही समस्त शुभ फलदायक व्रतरूप है। दूसरी बहुत सी बातें करने से क्या लाभ है। संक्षेप में यों समझ लीजिए कि संसार में यह णमोकार मंत्र ऐसा महत्वशाली है, जिसके प्रभाव से ऐसी कोई चीज नहीं, जो शुभरूप न हो सके।

स्वपन् जाग्रत्तिष्ठन्नथ पथि चलन् वेश्मनि स्खलन्।
भ्रमन् क्लिश्यन् माद्यन् वनगिरि-समुद्रेष्ववतरन्।।
नमस्कारान् पंच स्मृतिखनिनिखातानिव सदा।
प्रशस्तौ विन्यस्तान्निव वहति यः सोत्र सुकृतिः।।११।।

(११)

जो मनुष्य सोते जगते, पथ में चलते यह मंत्र पढ़ें।
घर में भी स्खलन समय, इस मंत्रराज को सदा पढ़ें।।
भ्रमण-खिन्न-उन्मत्त अवस्था, वन पर्वत या सागर हो।
हृदय पटल में णमोकार यह, मंत्र ही सदा उजागर हो।।

दोहा —**पत्थर पर उत्कीर्ण सम, धरो हृदय में मंत्र।**
पुण्यवान मानव जनम, पाकर बनो स्वतंत्र।।

अर्थ—जो मनुष्य सोते, जागते, मार्ग में चलते, घर में लड़खड़ाते, घूमते, खेदखिन्न होते, उन्मत्त होते, वन पर्वत में चलते, समुद्र में तैरते हुए, यानी प्रत्येक दशा में पंच नमस्कार मंत्र को अपने हृदय पटल पर (स्मृति में) पाषाण प्रशस्ति में उत्कीर्ण (खुदे हुए) अक्षरों के समान धारण किए रहता है, वह पुण्यवान है।

दुःखे सुखे भयस्थाने, पथि दुर्गे रणेपि वा।
श्रीपंचगुरुमन्त्रस्य, पाठः कार्यः पदे पदे।।१२।।

अर्थ—मनुष्य को दुख में, सुख में, भयभीत स्थान में, मार्ग में, वन में युद्ध में पग-पग पर पंचनमस्कार मंत्र का पाठ करना चाहिए।

(१२)

दोहा —**दुख-सुख भयप्रद मार्ग या, वन हो युद्धस्थान।**
पंचनमस्कृति मंत्र को, पढ़ो लहो सुखखान।।
णमोकार माहात्म्य यह, उमास्वामिकृत स्तोत्र।
उसका ही अनुवाद यह, पढ़ो लहो सुखस्त्रोत।।१।।
ज्ञानमती गणिनीप्रमुख, मात जगतविख्यात।
उनकी शिष्या चन्दना-मती आर्यिका मात।।२।।
किया पद्य अनुवाद यह, गुरु आज्ञा सिर धार।
भौतिक आत्मिक सुख मिले, पढ़ो मंत्र हितकार।।३।।

देवदर्शन विधि

मंदिर के दरवाजे में प्रवेश करते ही बोलें—**ॐ जय जय जय, निःसही निःसही निःसही। नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु।**

भगवान के सामने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर णमोकार मंत्र पढ़ें। पुनः भगवान की तीन प्रदक्षिणा देवें। बँधी मुट्ठी से अँगूठा भीतर करके चावल के पुँज चढ़ावें।

भगवान के सामने **अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु** ऐसे पाँचों पद बोलते हुए क्रम से बीच में, ऊपर, दाहिनी तरफ, नीचे और बाईं तरफ ऐसे पाँच पुँज चढ़ावें।

*
* * *
*

सरस्वती के सामने **प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः** ऐसे बोलकर क्रम से चार पुँज लाइन से चढ़ावें। ❋❋❋❋

गुरू के सामने **सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र** ऐसे बोलकर क्रम से तीन पुँज लाइन से चढ़ावें। ✦✦✦

पुनः हाथ जोड़कर निम्न स्तोत्र बोलें—

हे भगवन्! नेत्रद्वय मेरे, सफल हुये हैं आज अहो।
तव चरणांबुज का दर्शन कर, जन्म सफल है आज अहो।।
हे त्रिभुवन के नाथ! आपके, दर्शन से मालूम होता।
यह संसार जलधि चुल्लू जल, सम हो गया अहो ऐसा।।1।।
अर्हत्सिद्धाचार्य औ, पाठक साधु महान्।
पंच परम गुरू को नमूँ, भवभव में सुखदान।।2।।

पुनः विधिवत् पृथ्वी तल पर मस्तक टेककर नमस्कार करें।

णमोकार मंत्र का अर्थ एवं महिमा

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक में सर्व साधुओं को नमस्कार हो।

(१) 'णमो अरिहंताणं'

'अरिहननादरिहंता!' 'अरि' अर्थात् शत्रुओं के 'हननात्' अर्थात् नाश करने वाले होने से 'अरिहंत' कहलाते हैं।

नरक, तिर्यंच, कुमानुष और प्रेत इन पर्यायों में निवास करने से होने वाले जो अशेष दु:ख हैं, उन दु:खों को प्राप्त कराने में निमित्त कारण होने से मोह को 'अरि' अर्थात् शत्रु कहा है।

शंका—केवल मोह को ही अरि मान लेने पर शेष कर्मों का व्यापार निष्फल हो जावेगा ?

समाधान—ऐसी बात नहीं है, क्योंकि बाकी के सभी कर्म मोह के ही आधीन हैं। मोह के बिना शेष कर्म अपने-अपने कार्य की उत्पत्ति में व्यापार करते हुए नहीं पाये जाते हैं। जिससे कि वे अपने कार्य में स्वतंत्र समझे जावें। इसलिए सच्चा अरि मोह ही है और शेष कर्म उसी के आधीन हैं।

शंका—मोह कर्म के नष्ट हो जाने पर कितने ही काल तक शेष कर्मों की सत्ता रहती है, इसलिए उनका मोह के आधीन होना नहीं बनता है ?

समाधान—ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्योंकि मोहरूप अरि के नष्ट हो जाने पर जन्म-मरण की परम्परारूप संसार के उत्पादन की सामर्थ्य शेष कर्मों में नहीं रहती है। इसलिए उनका सत्त्व असत्त्व के समान हो जाता है तथा केवलज्ञानादि सम्पूर्ण आत्म गुणों के आविर्भाव के रोकने में समर्थ कारण होने से भी मोह प्रधान शत्रु है और उस शत्रु के नाश करने से 'अरिहंत' यह संज्ञा प्राप्त होती है।

'रजोहननाद्वा अरिहंता'। अथवा रज अर्थात् आवरण कर्मों के नाश करने से 'अरिहंत' होते हैं। ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म धूलि की तरह बाह्य और

अंतरंग स्वरूप समस्त त्रिकालगोचर अनंत अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय स्वरूप वस्तुओं को विषय करने वाले बोध और अनुभव के प्रतिबंधक होने से रज कहलाते हैं। मोह को भी रज कहते हैं, क्योंकि जिस प्रकार जिनका मुख भस्म से व्याप्त होता है, उनमें जिह्मभाव—कार्य की मदंता देखी जाती है, उसी प्रकार मोह से जिनकी आत्मा व्याप्त हो रही है, उनके भी जिह्मभाव देखा जाता है अर्थात् उनकी स्वानुभूति में कालुष्य, मंदता या कुटिलता पाई जाती है। शेष कर्मों का विनाश इन तीन कर्मों के विनाश का अविनाभावी है।

'रहस्याभावाद्वा अरिहंता'। अथवा 'रहस्य' के अभाव से भी अरिहंत होते हैं। रहस्य अंतराय कर्म को कहते हैं। इस अंतराय कर्म का नाश शेष तीन घातिया कर्मों के नाश का अविनाभावी है और अंतराय कर्म के नाश होने पर अघातिया कर्म भ्रष्ट बीज के समान नि:शक्त हो जाते हैं।

'अतिशयपूजार्हत्वाद्वार्हन्त:।' अथवा सातिशय पूजा के योग्य होने से अर्हंत होते हैं, क्योंकि गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण इन पाँचों कल्याणकों में देवों द्वारा की गई पूजाएँ देव, असुर और मनुष्यों को प्राप्त पूजाओं से अधिक अर्थात् महान् है, इसलिए इन अतिशयों के योग्य होने से अर्हन्त होते हैं।

अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्य, क्षायिक-सम्यक्त्व, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग और क्षायिकउपभोग आदि प्रगट हुए अनंत गुण स्वरूप होने से जिन्होंने यहीं पर सिद्धस्वरूप प्राप्त कर लिया है, स्फटिक मणि के पर्वत के मध्य से निकलते हुए सूर्य बिम्ब के समान जो देदीप्यमान हो रहे हैं, अपने शरीर प्रमाण होने पर भी जिन्होंने अपने ज्ञान के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया है, अपने ज्ञान में ही सम्पूर्ण प्रमेय के प्रतिभासित होने से जो विश्वरूपता को प्राप्त हो गये हैं, सम्पूर्ण रोगों के दूर हो जाने के कारण जो निरामय हैं, सम्पूर्ण पापरूपी अंजन के नष्ट हो जाने से जो निरंजन है और दोषों की कलाएँ—सम्पूर्ण दोषों से रहित होने के कारण जो निष्कलंक हैं, ऐसे उन अरिहंतों को नमस्कार हो।

(२) 'णमो सिद्धाणं'

जो निष्ठित अर्थात् पूर्णत: अपने स्वरूप में स्थित हैं, कृतकृत्य हैं, जिन्होंने अपने साध्य को सिद्ध कर लिया है और जिनके ज्ञानावरणादि आठ कर्म नष्ट हो

चुके हैं उन्हें सिद्ध कहते हैं।

शंका—सिद्ध और अरिहंतों में क्या भेद है ?

समाधान—आठ कर्मों को नष्ट करने वाले सिद्ध होते हैं और चार घातिया कर्मों को नष्ट करने वाले अरिहंत होते हैं। यही उन दोनों में भेद है।

शंका—चार घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने पर अरिहंतों की आत्मा के समस्त गुण प्रगट हो जाते हैं इसलिए सिद्ध और अरिहंत में गुणकृत भेद नहीं हो सकता है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि अरिहंतों के अघातिया कर्मों का उदय और सत्त्व दोनों विद्यमान हैं। इसलिए इन दोनों में भेद है।

शंका—ये अघातिया कर्म शुक्लध्यानरूप अग्नि के द्वारा अधजले हो जाने के कारण उदय और सत्त्व के विद्यमान रहते हुए भी अपना कार्य करने में समर्थ नहीं हैं ?

समाधान—ऐसा भी नहीं है, क्योंकि यदि आयु आदि कर्म अपने कार्य में असमर्थ माने जायें, तो शरीर का पतन हो जाना चाहिए, परन्तु शरीर आदि का पतन तो होता नहीं है अतः आयु आदि शेष कर्मों का कार्य करना सिद्ध है।

शंका—उन कर्मों का कार्य तो चौरासी लाख योनिरूप जन्म, जरा और मरण से युक्त संसार है। वह अघातिया कर्मों के रहने पर भी अरिहंत परमेष्ठी के नहीं पाया जाता है तथा अघातिया कर्म आत्मा के गुणों के घात करने में असमर्थ भी हैं। इसलिए अरिहंत और सिद्ध में गुणों की अपेक्षा कोई भेद नहीं है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि जीव के ऊर्ध्वगमन स्वभाव का प्रतिबंधक आयु कर्म का उदय उनके विद्यमान है तथा सलेपत्व और निर्लेपत्व की अपेक्षा तो इन दोनों में भेद स्पष्ट ही है।

आठों कर्मों से रहित, आठ गुणों से युक्त और तीन लोक के मस्तक पर विराजमान ऐसे सिद्धपरमेष्ठियों को यहाँ नमस्कार किया गया है।

(३) 'णमो आइरियाणं'

जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य इन पाँच प्रकार के आचारों का स्वयं आचरण करते हैं और दूसरे साधुओं से आचरण कराते हैं, उन्हें आचार्य

कहते हैं। जो चौदह विद्यास्थानों के पारंगत हैं, ग्यारह अंग के धारी हैं अथवा आचारांग मात्र के धारी हैं अथवा तत्कालीन स्वसमय और परसमय में पारंगत हैं, मेरु के समान निश्चल हैं, पृथ्वी के समान सहनशील हैं, जिन्होंने समुद्र के समान मल-दोषों को बाहर फेंक दिया है और जो सात प्रकार के भय से रहित हैं उन्हें आचार्य कहते हैं।

प्रवचनरूपी समुद्र में अवगाहन करने से जिनकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो निर्दोषरीति से छह आवश्यकों का पालन करते हैं, मेरु के समान निष्कम्प हैं, शूरवीर हैं, सिंह के समान निर्भीक हैं, निर्दोष हैं, देश, कुल और जाति से शुद्ध हैं, जो संघ के संग्रह और अनुग्रह में कुशल हैं, कीर्तिमान हैं, जो सारण—आचरण, वारण-निषेध और शोधन—व्रतों की शुद्धि करने वाली क्रियाओं में नित्य ही उद्युक्त हैं, उन्हें आचार्य परमेष्ठी कहते हैं, ऐसे आचार्यों को यहाँ नमस्कार किया गया है।

(४) 'णमो उवज्झायाणं'

चौदह विद्यास्थान—चौदह पूर्वों का व्याख्यान करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी होते हैं। अथवा तत्कालीन परमागम के व्याख्यान करने वाले उपाध्याय होते हैं। वे संग्रह—शिष्यों को दीक्षा देना और अनुग्रह—उनका संरक्षण करना, आदि गुणों को छोड़कर पहले कहे गये आचार्य के समस्त गुणों से युक्त होते हैं।

जो साधु चौदह पूर्वरूपी समुद्र में प्रवेश करके मोक्षमार्ग में स्थित हैं तथा मोक्ष के इच्छुक शीलंधरों अर्थात् मुनियों को उपदेश देते हैं, उन मुनीश्वरों को उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं। ऐसे उपाध्यायों को यहाँ नमस्कार किया गया है।

(५) 'णमो लोए सव्वसाहूणं'

लोक में अर्थात् ढाई द्वीपवर्ती सर्व साधुओं को नमस्कार हो। जो अनंतज्ञानादि रूप शुद्ध आत्मा के स्वरूप की साधना करते हैं उन्हें साधु कहते हैं। जो पाँच महाव्रतों को धारण करते हैं, तीन गुप्तियों से सुरक्षित हैं, अठारह हजार शील के भेदों को धारण करते हैं और चौरासी लाख उत्तर गुणों का पालन करते हैं, वे साधु परमेष्ठी होते हैं।

सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी, बैल के समान भद्र

प्रकृति, मृग के समान सरल, पशु के समान निरीह गोचरी वृत्ति करने वाले, पवन के समान निःसंग, सूर्य के समान तेजस्वी, सागर के समान गंभीर, सुमेरु के समान परीषह और उपसर्गों के आने पर अकम्प, चन्द्रमा के समान शांतिदायक, मणि के समान प्रभापुंजयुक्त, पृथ्वी के समान सर्वबाधाओं को सहने वाले, सर्प के समान अनियत वसतिका आदि में निवास करने वाले, आकाश के समान निरालंबी और सदा काल मोक्ष का अन्वेषण करने वाले साधु होते हैं। ऐसे सम्पूर्ण कर्मभूमियों में उत्पन्न होने वाले त्रिकालवर्ती साधुओं को नमस्कार किया गया है।

पाँच परमेष्ठियों को नमस्कार करने में इस नमस्कार मंत्र में 'सर्व' और 'लोक' पद हैं वे अंत दीपक हैं, अतः सम्पूर्ण क्षेत्र में रहने वाले त्रिकालवर्ती अरिहंत आदि देवताओं को नमस्कार करने के लिए उन्हें प्रत्येक नमस्कारात्मक पद के अर्थ के साथ जोड़ लेना चाहिए।

शंका—जिन्होंने आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लिया है, ऐसे अरिहंत और सिद्धपरमेष्ठी को नमस्कार करना योग्य है, किन्तु आचार्यादिक तीन परमेष्ठियों ने आत्मस्वरूप को प्राप्त नहीं किया है, अतः उनमें देवपना नहीं आ सकता है, इसलिए उन्हें नमस्कार करना योग्य नहीं है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि अपने-अपने भेदों से अनंत भेदरूप रत्नत्रय ही देव है, अतएव रत्नत्रय से युक्त जीव भी देव हैं, अन्यथा (यदि रत्नत्रय की अपेक्षा देवपना न माना जाये तो) सम्पूर्ण जीवों को देव मानने की आपत्ति आ जायेगी। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि आचार्यादिक भी रत्नत्रय के यथायोग्य धारक होने से देव हैं। क्योंकि अरिहंतादि से आचार्यादि में रत्नत्रय के सद्भाव की अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है। अर्थात् जिस तरह अरिहंत, सिद्ध में रत्नत्रय का सद्भाव है, उसी तरह आचार्यादि में भी रत्नत्रय का सद्भाव है अतः आंशिक रत्नत्रय की अपेक्षा से इनमें देवपना बन जाता है।

आचार्यादि में स्थित तीन रत्नों का सिद्धपरमेष्ठी में स्थित रत्नों से भी भेद नहीं है। यदि दोनों के रत्नत्रय में सर्वथा भेद मान लिया जावे, तो आचार्यादि में स्थित रत्नों के अभाव का प्रसंग आ जावेगा।

शंका—सम्पूर्ण रत्न अर्थात् पूर्णता को प्राप्त रत्नत्रय ही देव है, रत्नों का

एकदेश देव नहीं हो सकता है ?

समाधान—ऐसा कहना भी उचित नहीं है, क्योंकि रत्नों के एकदेश में देवपना न मानने पर रत्नों की समग्रता में भी देवपना नहीं बन सकता है। अर्थात् जो कार्य जिसके एकदेश में नहीं देखा जाता है, वह उसकी समग्रता में कहाँ से आ सकता है ?

शंका—आचार्यादि में स्थित रत्नत्रय समस्त कर्मों के क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं, क्योंकि उनके रत्न एकदेश हैं ?

समाधान—यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि "जिस प्रकार पलाल राशि को जलानेरूप कार्य करने में अग्निसमूह समर्थ है, उसी प्रकार से अग्नि का एक कण भी उसको जलाने में समर्थ है। ऐसे ही यहाँ पर भी समझना चाहिए। इसलिए आचार्यादि भी देव हैं, यह बात निश्चित हो जाती है।[1]"

अरिहंतों को पहले नमस्कार क्यों किया ?

शंका—सर्वप्रकार के कर्मलेप से रहित सिद्धपरमेष्ठी के विद्यमान रहते हुए अघातिया कर्मों के लेप से युक्त अरिहंतों को आदि में नमस्कार क्यों किया जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सबसे अधिक गुण वाले सिद्धों में श्रद्धा की अधिकता के कारण अरिहंत परमेष्ठी ही हैं, अर्थात् अरिहंत परमेष्ठी के निमित्त (उपदेश) से ही अधिक गुण वाले सिद्धों में सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। अथवा यदि अरिहंत परमेष्ठी न होते तो हम लोगों को आप्त, आगम और पदार्थ का परिज्ञान नहीं हो सकता था किन्तु अरिहंत परमेष्ठी के प्रसाद से हमें इस बोध की प्राप्ति हुई है। इसलिए उपकार की अपेक्षा भी आदि में अरिहंतों को नमस्कार किया जाता है।

शंका—इस प्रकार आदि में अरिहंतों को नमस्कार करना तो पक्षपात है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना, क्योंकि 'न पक्षपातो दोषाय, शुभपक्षवृत्तेः श्रेयोहेतुत्वात्'। यह पक्षपात दोषोत्पादक नहीं है। किन्तु शुभ पक्ष में रहने से वह कल्याण का ही कारण है तथा द्वैत को गौण करके अद्वैत की प्रधानता से किये

1. "अग्निसमूहकार्यस्य पलालराशिदाहस्य तत्कणादप्युपलम्भात्। तस्मादाचार्यादयोऽपि देवा इति स्थितम्।"

गये नमस्कार में द्वैतमूलक पक्षपात बन भी तो नहीं सकता है। अर्थात् पक्षपात वहीं संभव है जहाँ दो वस्तुओं में से किसी एक की ओर अधिक आकर्षण होता है। परन्तु यहाँ परमेष्ठियों को नमस्कार करने में दृष्टि प्रधानतया गुणों की ओर रहती है, अवस्थाभेद की प्रधानता नहीं है। इसलिए यहाँ पक्षपात किसी भी प्रकार संभव नहीं है।

अथवा आप्त की श्रद्धा से ही आप्त, आगम और पदार्थों के विषय में दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न होती है, इस बात को प्रसिद्ध करने के लिए भी आदि में अरिहंतों को नमस्कार किया गया है। श्री गौतमस्वामी भी कहते हैं—

जस्संतियं धम्मपहं णिगच्छे, तस्संतियं वेणयियं पउंजे।
सक्कारए तं सिरपंचएण, काएण वाया मणसा य णिच्चं।।

जिनके समीप मैंने धर्ममार्ग को प्राप्त किया है उनके समीप विनय युक्त होकर प्रवृत्ति करता हूँ तथा उनका मैं शिरपंचक अर्थात् दोनों घुटने टेककर, दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक को पृथ्वी पर झुकाकर पंचांग नमस्कारपूर्वक मन-वचन-काय से निरन्तर सत्कार करता हूँ।

इस महामंत्र के अर्थ को समझकर यह निश्चित हो जाता है कि 'णमो अरिहंताणं' और 'णमो अरहंताणं' दोनों पाठ शुद्ध हैं तथा अरिहंत और सिद्धों में रत्नत्रय पूर्ण प्रकट हो चुके हैं किन्तु आचार्य, उपाध्याय और साधु में ये रत्नत्रय एकदेश ही प्रकट हुए हैं, फिर भी ये तीनों परमेष्ठी भी पूज्य हैं, वंद्य हैं। सिद्धों के यद्यपि सम्पूर्ण कर्म समाप्त हो चुके हैं फिर भी अरिहंत परमेष्ठी उपदेशक होने से सर्वोपकारी हैं इसलिए उन्हें पहले नमस्कार करने में दोष नहीं है प्रत्युत गुण ही है, क्योंकि शुभपक्ष में किया गया पक्षपात, पक्षपात नहीं कहलाता है वह हित के लिए ही होता है। इस महामंत्र को पढ़ते समय प्रत्येक पदों के अर्थ का चिंतवन करना चाहिए।

महामंत्र की महिमा

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

अर्थ-अर्हंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और सर्व साधुओं को नमस्कार हो। पंचपरमेष्ठी वाचक इस महामंत्र में सम्पूर्ण द्वादशांग निहित है। यथा-

"आचार्यों ने द्वादशांग जिनवाणी का वर्णन करते हुए प्रत्येक की पदसंख्या तथा समस्त श्रुतज्ञान अक्षरों की संख्या का वर्णन किया है। इस महामंत्र में समस्त श्रुतज्ञान विद्यमान है क्योंकि पंचपरमेष्ठी के अतिरिक्त अन्य श्रुतज्ञान कुछ नहीं है। अतः यह महामंत्र समस्त द्वादशांग जिनवाणीरूप है। इस महामंत्र का विश्लेषण करने पर निम्न निष्कर्ष सामने आते हैं—

इस मंत्र में ५ पद और ३५ अक्षर हैं। णमो अरिहंताणं=७ अक्षर, णमो सिद्धाणं=५, णमो आइरियाणं=७, णमो उवज्झायाणं=७, णमो लोए सव्वसाहूणं= ९ अक्षर, इस प्रकार इस मंत्र में कुल ३५ अक्षर हैं। स्वर और व्यंजनों का विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है—

यथा—

ण्+अ+म्+ओ+अ+र्+इ+ह्+अं+त्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+स्+इ+द्+ध्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+आ+इ+र्+इ+य्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+उ+व्+अ+ज्+झ्+आ+य्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+ल्+ओ+ए+स्+अ+व्+व्+अ+स्+आ+ह्+ऊ+ण्+अं।

इस तरह प्रथम पद में ६ व्यंजन, ६ स्वर, द्वितीय पद में ६ व्यंजन, ५ स्वर, तृतीय पद में ५ व्यंजन, ७ स्वर, चतुर्थ पद में ६ व्यंजन, ७ स्वर, पंचम पद में ८ व्यंजन, ९ स्वर हैं। इस मंत्र में सभी वर्ण अजंत हैं, यहाँ हलन्त एक भी वर्ण नहीं है। अतः ३५ अक्षरों में ३५ स्वर और ३० व्यंजन होना चाहिए था किन्तु यहाँ स्वर ३४ हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि 'णमो अरिहंताणं' इस पद में ६ ही स्वर माने जाते हैं। मंत्रशास्त्र के व्याकरण के अनुसार 'णमो अरिहंताणं' पद के 'अ' का लोप हो जाता है। यद्यपि प्राकृत में 'एङः'[1]-नेत्यनुवर्तते। एङि त्येदोतौ। एदोतोः संस्कृतोक्तः संधिः प्राकृते तु न भवति। यथा देवो अहिणंदणो, अहो अच्चरिअं, इत्यादि। सूत्र के अनुसार संधि न होने से 'अ' का अस्तित्व ज्यों का त्यों रहता है। 'अ' का लोप या खंडाकार नहीं होता है, किन्तु मंत्रशास्त्र में 'बहुलम्' सूत्र की प्रवृत्ति मानकर 'स्वरयोरव्यवधाने प्रकृतिभावो लोपो वैकस्य।'[2]

1. त्रिविक्रम व्याकरण पृ. 4, सूत्र 21/2। 2. जैन सिद्धांत कौमुदी, पृ. 4, सूत्र 1/2/2।

इस सूत्र के अनुसार 'अरिहंताणं' वाले पद के 'अ' का लोप विकल्प से हो जाता है अतः इस पद में ६ ही स्वर माने जाते हैं। अतः मंत्र में कुल ३५ अक्षर होने पर भी ३४ ही स्वर माने जाते हैं। इनमें जो द्धा, ज्झा, व्व से संयुक्ताक्षर हैं, उनमें से एक-एक व्यंजन लेने से ३० व्यंजन होते हैं। इस प्रकार से कुल स्वर और व्यंजनों की संख्या ३४+३०=६४ है। मूल वर्णों की संख्या भी ६४ ही है। प्राकृत भाषा के नियमानुसार अ, इ, उ और ए मूल स्वर तथा ज झ ण त द ध य र ल व स और ह ये मूल व्यंजन इस मंत्र में निहित हैं। अतएव ६४ अनादि मूलवर्णों को लेकर समस्त श्रुत-ज्ञान के अक्षरों का प्रमाण निम्न प्रकार निकाला जा सकता है। गाथा सूत्र निम्न प्रकार है—

चउसट्ठिपदं विरलिय दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा।
रूऊणं च कए पुण सुदणाणस्सक्खरा होंति।।

अर्थ—उक्त चौंसठ अक्षरों का विरलन करके प्रत्येक के ऊपर दो का अंक देकर परस्पर सम्पूर्ण दो के अंकों का गुणा करने से लब्ध राशि में एक घटा देने से जो प्रमाण रहता है, उतने ही श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं।

इस नियम से गुणाकार करने पर—

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणयं च।।

अर्थात् एक आठ चार-चार-छह-सात-चार-चार-शून्य-सात-तीन-सात-शून्य-नौ-पाँच-पाँच-एक-छह-एक-पाँच, यह संख्या आती है। इस गाथा सूत्र के अनुसार १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ये समस्त श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं।

इस प्रकार णमोकार मंत्र में समस्त श्रुतज्ञान के अक्षर निहित हैं, क्योंकि अनादिनिधन मूलाक्षरों पर से ही उक्त प्रमाण निकाला गया है अतः संक्षेप में समस्त जिनवाणीरूप यह मंत्र है। इसका पाठ या स्मरण करने से कितना महान् पुण्य का बंध होता है तथा केवलज्ञान लक्ष्मी की प्राप्ति भी इस मंत्र की आराधना से होती है। ज्ञानार्णव में श्री शुभचन्द्राचार्य ने इस मंत्र की आराधना को बताते हुए लिखा है—

"इस लोक में जितने भी योगियों ने मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त किया है, उन सबने श्रुतज्ञानभूत इस महामंत्र की आराधना करके ही प्राप्त किया है। इस

महामंत्र का प्रभाव योगियों के अगोचर है। फिर भी जो इसके महत्व से अनभिज्ञ होकर वर्णन करना चाहता है, मैं समझता हूँ कि वह वायुरोग से व्याप्त होकर ही बक रहा है। पापरूपी पंक से संयुत भी जीव यदि शुद्ध हुए हैं, तो इस मंत्र के प्रभाव से ही शुद्ध हुए हैं। मनीषीजन भी मंत्र के प्रभाव से ही संसार के क्लेश से छूटते हैं।"[१]

इसलिए इस महामंत्र की महिमा को अचिन्त्य ही समझना चाहिए।

अयं महामंत्रः मंगलाचरणरूपेणात्र संग्रहीतोऽपि अनादिनिधनः, न तु केनापि रचितो ग्रथितो वा।

उक्तं च णमोकारमंत्रकल्पे श्रीसकलकीर्तिभट्टारकैः—

महापंचगुरोर्नाम, नमस्कारसुसम्भवम्।
महामंत्रं जगज्जेष्ठ-मनादिसिद्धमादिदम्[२]।।६३।।
महापंचगुरूणां, पंचत्रिंशदक्षरप्रमम्।
उच्छ्वासैस्त्रिभिरेकाग्र-चेतसा भवहानये[३]।।६८।।

श्रीमदुमास्वामिनापि प्रोक्तम्—

ये केचनापि सुषमाद्यरका अनन्ता, उत्सर्पिणी-प्रभृतयः प्रययुर्विवर्ताः।
तेष्वप्ययं परतरः प्रथितप्रभावो, लब्ध्वामुमेव हि गताः शिवमत्र लोकाः[४]।।३।।

अथवा द्रव्यार्थिकनयापेक्षयानादिप्रवाहरूपेणागतोऽयं महामंत्रोऽनादिः, पर्यायार्थिकनयापेक्षया हुंडावसर्पिणीकालदोषापेक्षया तृतीयकालस्यान्ते तीर्थंकरदिव्यध्वनिसमुद्गतः सादिश्चापि संभवति।

यह मंत्र किसी के द्वारा रचित या गूँथा हुआ नहीं है। प्राकृतिक रूप से अनादिकाल से चला आ रहा है।

"णमोकार मंत्रकल्प" में श्री सकलकीर्ति भट्टारक ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—नमस्कार मंत्र में रहने वाले पाँच महागुरुओं के नाम से निष्पन्न यह महामंत्र जगत् में ज्येष्ठ—सबसे बड़ा और महान है, अनादिसिद्ध है और आदि अर्थात् प्रथम है।।६३।।

---

1. श्रियमात्यन्तिकीं प्राप्ता योगिनो येऽत्र केचन। अमुमेव महामंत्रं, सु समाराध्य केवलम्।। (ज्ञानार्णव) मंगलमंत्र णमोकार : एक अनुचिंतन पुस्तक के आधार से। 2. आदिदं-प्रथममित्यर्थः। 3-4. णमोकारमंत्रकल्पे।

पाँच महागुरुओं के पैंतीस अक्षर प्रमाण मंत्र को तीन श्वासोच्छ्वासों में संसार भ्रमण के नाश हेतु एकाग्रचित्त होकर सभी भव्यजनों को जपना चाहिए अथवा ध्यान करना चाहिए।।६८।।

श्रीमत् उमास्वामी आचार्य ने भी कहा है—

श्लोकार्थ—उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी आदि के जो सुषमा, दुःषमा आदि अनन्त युग पहले व्यतीत हो चुके हैं उनमें भी यह णमोकार मंत्र सबसे अधिक महत्त्वशाली प्रसिद्ध हुआ है। मैं संसार से बहिर्भूत (बाहर) मोक्ष प्राप्त करने के लिए उस णमोकार मंत्र को नमस्कार करता हूँ।।३।।

अथवा द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से अनादि प्रवाहरूप से चला आ रहा यह महामंत्र अनादि है और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा हुंडावसर्पिणी कालदोष के कारण तृतीय काल के अंत में तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से उत्पन्न होने के कारण यह सादि भी है।

चत्तारि मंगलं-अरिहंत मंगल, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अनादिसिद्ध णमोकार मंत्र

संसार में जन्म लेने वाला प्रत्येक मानव किसी न किसी रूप में अपने इष्टदेव का स्मरण करता है। चाहे वह जैन हो या बौद्ध, सिक्ख हो या ईसाई, हिन्दू हो या मुसलमान, आराध्यदेव सभी ने माना है। लगभग सभी धर्म व जाति के लोग अपने से ऊपर कोई महाशक्तिमान् ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। उन्हीं में से जैनधर्म का मूल मंत्र णमोकार मंत्र है। आप सभी लोगों को याद होगा यह मंत्र—

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

इस मंत्र का अर्थ यह है—अरहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक में सर्वसाधुओं को नमस्कार हो। पाँच पदों में इन पंचपरमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है। इसमें कोई व्यक्ति विशेष का नाम न लेकर गुणों को ही नमन किया है।

जो चार घातिया कर्मों का नाश कर चुके हैं उन्हें अर्हंत परमेष्ठी कहते हैं और जिन्होंने संपूर्ण आठों कर्मों का नाश कर मोक्ष अवस्था प्राप्त कर लिया है वे सिद्ध कहलाते हैं। अरहंत, सिद्ध पद को प्राप्त करने के इच्छुक ३६ गुणों का पालन करने वाले चतुर्विध संघ के नायक आचार्य परमेष्ठी होते हैं। संघ में शिष्यों को पठन-पाठन कराने वाले २५ गुणों को धारण करने वाले उपाध्याय परमेष्ठी कहे जाते हैं तथा रत्नत्रय की साधना में लीन २८ मूलगुणों को पालने वाले साधु परमेष्ठी होते हैं।

वर्तमान में इन पाँचों परमेष्ठियों में से तीन परमेष्ठी के दर्शन प्रत्यक्ष रूप में हो रहे हैं। पंचमकाल में इस कर्मभूमि में अरहंत होते नहीं और जब अरहंत ही नहीं हैं तो सिद्ध पद की प्राप्ति कैसे होगी। अतः अरहंत, सिद्ध की स्थापना धातु या पाषाण की प्रतिमाओं में करके उनकी पूजा की जाती है। इस महामंत्र को उठते-बैठते चलते-फिरते प्रतिक्षण जपना चाहिए जिससे कि कोई भी अमंगल मंगल में परिवर्तित हो जाता है।

आप प्रतिदिन मंदिर में पढ़ते भी हैं—

अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पंचनमस्कारं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।

अर्थात् अपवित्र अवस्था में भी णमोकार मंत्र को मानसिक रूप में हमेशा जपने से पापों का क्षालन होता है। पाँच पद वाला यह मूल मंत्र ३५ अक्षरी मंत्र कहलाता है। इसको संक्षिप्त रूप में जानने के लिए प्रत्येक पद का प्रथम अक्षर लेकर "असिआउसा" यह मंत्र बनाया गया है। इस असिआउसा मंत्र को जाप करने से पाँचों परमेष्ठियों को नमस्कार हो जाता है। आप सब इस मंत्र की महिमा जानते हैं कि एक मरते हुए कुत्ते को जीवंधर कुमार ने णमोकार मंत्र सुनाया था जिसके प्रभाव से कुत्ता मरकर यक्षेन्द्र (देव) हो गया था और उस महामंत्र के अपमान का फल भी मालूम ही है।

सुभौम नामक एक षट्खंडाधिप चक्रवर्ती था। वह एक दिन अपने रसोईघर में भोजन करने गया, उसके रसोइए ने गरम-गरम खीर परोस दी। उस गरम खीर के खाने से चक्रवर्ती का मुंह जल गया और इस गुस्से के कारण उसने खीर का बर्तन उठा कर रसोइए के सिर पर पटक दिया जिससे रसोइया तुरंत मर गया और मरकर व्यंतरदेव हो गया। मैं आपको यह बता चुकी हूँ कि वैर और स्नेह के संस्कार जन्म-जन्मान्तर तक चलते हैं। व्यंतर देव को कुअवधिज्ञान से पूर्व भव का सारा वृतान्त ज्ञात हो गया तब उसके हृदय में राजा से बदला लेने की भावना जागृत हो उठी। देव तो वह था ही, विक्रिया से अनेकों रूप बनाने की क्षमता थी अतः एक दिन वह मनुष्य के वेष में सुन्दर सुस्वादु फल लेकर राजदरबार में आ गया और विनयपूर्वक राजा को भेंट किया।

राजा सुभौम ने ऐसे मधुर फल जीवन में कभी नहीं खाये थे अतः उन्हें लालच आ गया। उन्होंने उस व्यक्ति से पूछा कि ये फल कहाँ मिलते हैं? बस फिर क्या था उस व्यंतर को तो अपनी सफलता नजर आने लगी, उसने कहा- राजन्! आप मेरे साथ चलिए, समुद्र के उस पार बहुत बड़ा बगीचा है वहाँ ऐसे बहुत सारे फल मिलेंगे। उसके कथन पर मंत्रियों को कुछ आशंका हुई, उन लोगों ने राजा को गुप्त मंत्रणाएँ दी कि राजन्! इसके कथन में कुछ मायाजाल प्रतीत होता है आप साथ में न जावें किन्तु जिह्वालोलुपी राजा ने किसी की एक

न सुनी और चल दिया वेषधारी व्यंतर के साथ फलों को प्राप्त करने। "बुद्धि कर्मानुसारिणी" अर्थात् कर्म के अनुसार उसकी बुद्धि हो गई थी।

राजा और व्यंतर दोनों समुद्र के बीच में पहुँच गये। अब तो व्यंतर को अपना मनोरथ सिद्ध करने का स्वर्ण अवसर मिल गया। उसने अपना असली रूप प्रगट कर राजा से अपने पूर्व भव का समाचार बताया और बोला— राजन्! जैसे तुमने मुझे मारा था वैसे ही अब मैं तुम्हें जीवित नहीं छोड़ूंगा। इस अथाह समुद्र में अब तुम बच नहीं सकते। राजा सुभौम समझदार था। अतः विपत्ति के समय वह महामंत्र णमोकार को मन में पढ़ने लगा। देखिए! उस परमब्रह्म रूप मंत्र का प्रभाव, व्यंतर देव की मारक शक्ति भी कुंठित हो गई। वह सुभौम को मार नही सका। व्यंतरदेव ने समझ लिया कि यह अपने इष्टदेव का स्मरण कर रहा है इसीलिए मेरी शक्ति कुण्ठित हो गई है। अतः उसने कुछ कूटनीतिपूर्वक राजा से कहा—

अरे मूर्ख राजन्! यदि तुझे अपने प्राण प्रिय हैं तो मन में चिंतित मंत्र को पानी में लिखकर पैर रख दे तब मैं तुझे छोड़ सकता हूँ अन्यथा तू वापस राजमहल नहीं पहुँच सकता। यद्यपि राजा नियम में दृढ़ था किन्तु व्यंतर की मायावी बातों में आकर जीवन का लोभ आ गया उसने सोचा कि जीवन रहेगा तो पुनः धर्मसाधना कर लूँगा। मन में इस प्रकार सोचकर राजा ने वहीं जल में णमोकार मंत्र लिखकर पैर रख दिया, बस व्यंतर की मारक शक्ति जागृत हो गई और उसने सुभौम चक्रवर्ती को समुद्र में डुबो दिया।

महामंत्र के अपमान की भावना से सुभौम चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक चला गया।

सरस्वती का अपमान करने वाला व्यक्ति भला अच्छी गति को कैसे प्राप्त कर सकता है? कर्मसिद्धान्त कभी राजा या रंक को नहीं देखता वह तो अपना कार्य करता है। आज भी हम देखते हैं कि लोग धार्मिक कैलेण्डरों का अविनय करते हुए डरते नहीं हैं किन्तु ध्यान रखो कि जिस किसी पुस्तक, कैलेण्डर, चाबी के गुच्छे आदि में भगवान के फोटो हों या णमोकार आदि मंत्र लिखें हों तो उन्हें कभी इधर-उधर नीचे स्थानों में नहीं रखना चाहिए सदैव उनकी विनय करनी चाहिए।

णमोकार मंत्र को मैंने आपको "असिआउसा" के पाँच अक्षरी मंत्र रूप भी बताया। "अ" से अरहंत परमेष्ठी, "सि" से सिद्ध, "आ" से आचार्य, "उ" शब्द से उपाध्याय और "सा" से साधु इस प्रकार पाँचों परमेष्ठी का हृदय में चिंतन करते हुए असिआउसा का जाप्य करना चाहिए।

इसी प्रकार से महामंत्र का वाचक "ॐ" शब्द भी है। जो परंब्रह्म परमात्मा का सूचक होने से सर्वसम्प्रदाय मान्य है। प्रत्येक मंत्र के प्रारंभ में ॐ जुड़ा होता है। यह एकाक्षरी मंत्र है, इसका ध्यान करने से मस्तिष्क के समस्त तनाव दूर हो जाते हैं। भगवान् तीर्थंकर की दिव्यध्वनि भी ॐकार रूप मानी गई है। यह "ॐ" शब्द कैसे बना है इसकी प्रक्रिया देखिए-

णमो अरहंताणं का अकार ले लें, णमो सिद्धाणं पद में सिद्ध जीव अशरीरी— बिना शरीर के होते हैं अतः अशरीरी का अ ले लिया तो अ+अ=आ बना। आगे णमो आइरियाणं का आ+आ=दीर्घ आ ही रहा, णमो उवज्झायाणं का उ, आ+उ=ओ बना, णमो लोए सव्वसाहूणं में साधु से मुनि शब्द को ग्रहण किया है अतः मुनि का मकार लेकर "ओम्" बन गया। इसे ओम् और ॐ दोनों प्रकार से लिखा जाता है। पाँचों पदों का सार इस "ॐ" मंत्र की ही माला फेर लेने से महान पुण्यबंध होता है। अपनी और दूसरों की शांति के लिए प्रतिक्षण इसका उच्चारण करना चाहिए।

आप लोग रामायण देखते हैं उसमें सुग्रीव और रामचन्द्र की कैसी मित्रता दिखाई गई है। कभी आपने जैन रामायण का स्वाध्याय किया हो तो ज्ञात होगा कि इस एक णमोकार मंत्र के निमित्त से दोनों का संबंध जन्म-जन्मान्तर तक रहा है।

महापुर नगर में एक श्रावक पद्मरुचि सेठ किसी समय घोड़े पर चढ़कर अपने गोकुल की तरफ जा रहे थे। उन्होंने उस समय पृथ्वी पर पड़े हुए एक मरणासन्न बैल को देखा। पद्मरुचि घोड़े से उतरकर दयाबुद्धि से उसके पास बैठकर कान में णमोकार मंत्र सुनाने लगे। उस मंत्र को सुनते हुए बैल की आत्मा शरीर से निकल गई और मंत्र के प्रभाव से उसी नगर के राजा छत्रच्छाय की रानी के गर्भ में आ गया और नव मास के बाद पुत्र उत्पन्न हो गया। उसका नाम वृषभध्वज रखा गया।

अनंतर पूर्व संस्कारवश उसे पूर्व जन्म का स्मरण हो गया। बैल पर्याय के बोझा ढोना आदि दुःखों तथा मरते समय महामंत्र श्रवण का दृश्य उसके स्मृति पटल पर झूलने लगा। वह बचपन से ही णमोकार मंत्र को सदा पढ़ा करता था। किसी एक दिन वह घूमता हुआ उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ उस बैल का मरण हुआ था। जातिस्मरण के कारण वह वहाँ के सभी स्थानों को पहचान कर अपने उपकारी को ढूँढ़ने का उपाय सोचने लगा। कुछ सोचकर उसने उसी स्थान पर बहुत बड़ा जिनमंदिर बनवाया। उसमें दीवालों पर अनेकों चित्र भी बनवाए। उसी मंदिर के द्वार पर अपने द्वारपालों को नियुक्त कर दिया कि जो व्यक्ति इस चित्र को बड़े ध्यान से देखे मुझे उसके दर्शन करा देना।

संयोग की बात एक दिन वंदना की इच्छा करते हुए पद्मरुचि श्रावक उस मंदिर में आ गये और आश्चर्यचकित हो उस चित्र को देखने लगे और मन में सोचने लगे कि णमोकार मंत्र सुनाते हुए यह मेरा ही चित्र किसने बनाया है। अत्यधिक एकाग्रता से इनको चित्रपट देखते हुए इनके मनोभाव को समझकर द्वारपालों ने शीघ्र ही वृषभध्वज राजकुमार को यह समाचार पहुंचा दिया।

वृषभध्वज शीघ्र ही वहाँ आकर परमोपकारी पद्मरुचि सेठ को पहचान कर उनके चरणों में गिर गया और यह बताया कि यह बैल का जीव मैं ही हूँ। उसने कहा कि हे परम दयालु सेठ! मृत्यु के संकट में आपने हमें महामंत्र रूपी औषधि देकर इस उत्तम भव को प्राप्त कराया है। इस मंत्रदान का मूल्य यद्यपि मैं नहीं चुका सकता, फिर भी आज्ञा दो मैं आपका क्या उपकार करूँ? इस प्रकार दोनों परममित्र बन गये। कुछ भवों के पश्चात् पद्मरुचि का जीव मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र हुआ, बैल का जीव सुग्रीव हुआ है। सुग्रीव विद्याधर ने सीता की खबर मंगाने में और रावण के साथ युद्ध में रामचन्द्र की बहुत सहायता की है। अनंतर ये रामचन्द्र, सुग्रीव, हनुमान आदि महापुरुष दैगम्बरी दीक्षा लेकर घोरातिघोर तपश्चरण करके तुंगी गिरि पर्वत से मोक्ष गये हैं। हम लोग प्रतिदिन निर्वाणकांड में इन सिद्धस्वरूप महापुरुषों की वंदना करते हैं—

राम हणू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोटि निन्यानवे मुक्तिपयान, तुंगीगिरि वंदों धरध्यान।।

देखो! हमें कितने उदाहरण देखने और सुनने को मिलते हैं कि णमोकार

मंत्र के स्मरण से कितने ही जीव तिर गये। अधिक नहीं तो कम से कम चौबीस घंटे में आधा घंटा समय निकालकर अपनी आत्मा का चिंतन अवश्य करना चाहिए जिसमें ९ बार ॐकार की ध्वनि करते हुए स्थिरतापूर्वक पंचपरमेष्ठी का अवलंबन लेना चाहिए। प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में, समापन में, रात्रि को सोते समय, सोकर उठते ही नित्य णमोकार मंत्र का स्मरण अवश्य करना चाहिए। कभी किसी को तीव्र वेदना हो रही हो, एक कटोरी में छना हुआ शुद्ध जल सामने चौकी पर रखकर णमोकार मंत्र की एक माला फेरकर उस जल को पिला दीजिए वेदना तुरंत दूर हो जायेगी। विज्ञान भी आज इस बात को सिद्ध कर चुका है कि जल के सामने पढ़े जाने वाले मंत्र को जल उन पुद्गल शब्द वर्गणाओं को खींचता है और उससे शरीर के अंदर भी प्रभाव पड़ता है इसीलिए आचार्यों ने यंत्र-मंत्र का महत्व बतलाया है। यूँ तो बारह भावना में कहा है—

मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई।

यद्यपि यह सत्य है कि मरते हुए जीव को कोई मंत्र-यंत्र जीवित नहीं कर सकते फिर भी देवगति आदि उत्तम गति को प्राप्त करा देते हैं और कभी अकालमृत्यु को भी टाल देते हैं। धनंजय कवि जैसे भक्त ने मंत्रौषधि से ही बालक के ऊपर चढ़े सर्प विष को दूर कर उसे जीवनदान दिया था। णमोकार मंत्र के माहात्म्य में ही बतलाया है कि इस मंत्र के विविध प्रयोगों से बिच्छू आदि के विष भी उतर जाते हैं।

इसीलिए इस मंत्र के विषय में कह दिया है—

एसो पंचणमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

अर्थात् यह पंचनमस्कार मंत्र समस्त पापों का नाश करने वाला है और सभी मंगलों में पहला मंगल है। अतः अपने जीवन में मंगल की कामना करने वाले प्रत्येक मानव को इस महामंत्र का स्मरण अवश्य करना चाहिए।

बन्दर की लीला

लंका के राजा विद्युत्केश अपनी रानी श्रीचन्द्रा के साथ प्रमदवन में क्रीड़ा कर रहे थे। कुछ क्षण बाद श्रीचन्द्रा पतिदेव से कुछ दूर पहुँचकर वन की प्राकृतिक छटा का अवलोकन कर रही थी कि इसी बीच एक बन्दर वहाँ आया और श्रीचन्द्रा को देखकर खोखने लगा। श्रीचन्द्रा घबराकर इधर-उधर देखने लगी तब बन्दर ने उसकी साड़ी पकड़ ली। नाखूनों से उसके शरीर पर खरोंचें बना दीं। वह रानी जोर-जोर से रोने लगी।

रानी के रोने की आवाज सुनते ही राजा विद्युत्केश दौड़े आये और उसके शरीर में जहाँ-तहाँ नखों के घाव देखकर घबराये। रानी ने कहा—"स्वामिन्! इस बन्दर ने बिना कारण ही मुझे सताया है।" राजा को देखते ही वह बन्दर वहाँ से भागा किन्तु राजा ने क्रोध में आकर उस पर बाण का निशाना लगाया। बाण से घायल हुआ वह बन्दर वेग से भागता हुआ आगे कुछ दूर जाकर गिर पड़ा और छटपटाने लगा। वहीं पर आकाशगामी ऋद्धि से सहित एक महामुनि विराजमान थे। वे उस बन्दर को वैसी मरणासन्न स्थिति में देखकर उसके निकट आये। करुणाबुद्धि से उसे उपदेश दिया और कहा—

हे वानर! तुमने पूर्व में कुछ पाप-कर्म किया होगा जिसके फलस्वरूप इस तिर्यंच योनि में बन्दर हुए हो। जहाँ कोई किसी का नाथ या रक्षक नहीं है। अब इस समय तुम्हारी स्थिति मरने के सन्मुख है, अतः अब तुम सम्पूर्ण पदार्थों का त्याग कर दो, भोजन-पानी आदि का त्याग करके सल्लेखना स्वीकार करो कि जिससे अगले भव में तुम इस तिर्यंच योनि से छूटकर अच्छी गति प्राप्त कर लो। शरीर की वेदना से मन को हटाओ और मैं महामन्त्र सुना रहा हूँ तुम एकाग्रमन से सुनो। यह मन्त्र तुम्हें सर्वदुःखों से छुड़ा देगा।" इतना कहकर मुनिराज उसे णमोकार मन्त्र सुनाने लगे—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अरिहंतों को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायों को नमस्कार हो और लोक में सर्व-साधुओं को नमस्कार हो।

इस मन्त्र को सुनते-सुनते ही बन्दर के प्राण निकल गये और वह इस निंद्य शरीर को छोड़कर अड़तालीस मिनट के भीतर-भीतर में ही भवनवासी देवों में महोदधि कुमार नाम का देव हो गया।

इधर राजा विद्युत्केश उस बन्दर को मारकर आस-पास में खेलते हुए अन्य बन्दरों को भी मारने के लिये तैयार हो गये।

उधर महोदधि देव दिव्य वैक्रियिक शरीर प्राप्त कर सोचने लगा कि—"मैं कौन हूँ? और कहाँ से आया हूँ? यह स्थान क्या है?"

उसी क्षण उसे दिव्य अवधिज्ञान प्रगट हो गया जिसके निमित्त से उसने सारी घटना जान ली। वह सोचने लगा—"ओह! देखो, यह राजा कितना निर्दयी है। अपनी राज-सत्ता के मद में चूर हो रहा है। अरे! बन्दर स्वभाव से ही चंचल होते हैं। यदि मैंने बन्दर की पर्याय में इसकी पत्नी को नोंच-खसोट दिया तो क्या उसका दण्ड प्राणों से ही खत्म कर देना था। और फिर अब वह निर्दयी अन्य अनेक निरपराधी बन्दरों को क्यों मार रहा है?"

ऐसा सोचकर वह महोदधि देव वहाँ आ पहुँचा और उसने एक क्षण में अपनी विक्रिया से बहुत बड़ी वानर सेना बना ली। उन सभी वानरों के मुख दाढ़ों से विकराल थे, उनकी भौंहें चढ़ी हुई थीं और सिन्दूर के समान लाल-लाल उनका वर्ण था। वे सभी राजा के सामने आ गये। किसी ने हाथ में पर्वत उठा लिया, किसी ने बड़े-बड़े वृक्ष उखाड़ लिये और कोई हाथों से पृथ्वी को ही कूटने लगे। उस समय वे सभी बन्दर बहुत ही विकराल दिख रहे थे। ऐसे मायामयी वानरों ने कुपित हुए राजा विद्युत्केश से कहा—"अरे मूर्ख विद्याधर! अब तेरी मृत्यु आ गई है ऐसा समझ, ओ पापी! वानरों को मारकर तू किसकी शरण में जायेगा?"

इतना कहते हुए उन सभी वानरों ने भूमि और आकाश मण्डल को इतना व्याप्त कर दिया कि वहाँ सुई रखने की भी जगह नहीं रह गई। इस दृश्य को देखकर राजा विद्युत्केश के आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा। वह सोचने लगा—"यह वानरों का बल नहीं है और न ही वानर ऐसी मनुष्यों की भाषा में बोल सकते हैं, यह तो कुछ और ही होना चाहिये।"

वह राजा अपने जीवन की आशा छोड़कर मधुर वाणी में विनयपूर्वक उन

वानरों से पूछने लगा—"हे सत्पुरुषों! कहो, आप लोग कौन हो? तुम्हारे शरीर अत्यन्त चमक रहे हैं और तुम्हारी भाषा मनुष्यों जैसी है। ये सभी योग्यतायें वानर तिर्यंचों में तो सम्भव नहीं हैं।"

विद्याधर राजा को नम्र हुआ देखकर महोदधि देव कहने लगा—"हे राजन्! पशु जाति के स्वभाव से चपल वानर ने जो आपकी स्त्री को कष्ट दिया था और फिर जिसे तूने मारा था, वह मैं ही हूँ। साधु के प्रसाद से मैंने इस देवपद को प्राप्त कर लिया है। इस पर्याय से मैं महान शक्ति और वैभव से सम्पन्न हो चुका हूँ। तुम मेरी विभूति को देखो।"

इतना कहकर देव ने अपना तमाम वैभव उसको दिखलाया। यह देख राजा विद्युत्केश भय से काँपने लगा। तब देव उसे वैसा देख दयार्द्र होकर कहने लगा—"डरो मत, डरो मत।"

इस स्थिति में सान्त्वना प्राप्त कर राजा कहने लगा—"हे देव! अब मैं क्या करूँ? आप जो आज्ञा दें, मैं पालने को तैयार हूँ।"

तब देव ने कहा—"राजन्! जिन्होंने मुझे पंच नमस्कार मन्त्र सुनाकर दैवीय सम्पदा प्राप्त कराई है। चलो, हम और आप उन्हीं के पास चलें और उनके प्रसाद से पवित्र दयामयी धर्म को ग्रहण करें।"

राजा अपनी रानी श्रीचन्द्रा को साथ लेकर देव के साथ मुनिराज के समीप पहुँचे। तीनों ने बड़ी भक्ति से गुरू की प्रदक्षिणायें कीं और उन्हें विधिवत् नमस्कार किया। पुनः महोदधि कुमार कहने लगा—"हे अशरण के शरण! हे दुःखिजनवत्सल! हे दयासिन्धो! आपने अभी कुछ क्षण पूर्व जिस वानर को उपदेश दिया था और पंच नमस्कार मन्त्र सुनाया था, वह मैं ही हूँ। हे गुरूदेव! आपकी कृपा प्रसाद से मैं इस निंद्य पर्याय से छूटकर दिव्य देव पर्याय को प्राप्त हुआ हूँ।"

इतना कहकर देव ने महामालाओं से मुनिराज के चरणों की पूजा की तथा बार-बार उनके श्रीचरणों में नमस्कार किया। यह सब आश्चर्य देखकर राजा विद्युत्केश एकदम शान्त हो गया था अतः अब वह गुरूदेव के चरणों में नमस्कार कर पूछता है—"हे नाथ! मैं क्या करूँ? मेरा क्या कर्त्तव्य है?"

इतना सुनकर मुनिराज अपने मुखचन्द्र से अमृत की वर्षा करते हुए के

समान बोले—"चार ज्ञान के धारी हमारे गुरू यहीं पास में विद्यमान हैं, सो हम लोग उन्हीं के समीप चलें, यही सनातन धर्म है क्योंकि आचार्य के निकट विद्यमान होने पर भी जो शिष्य आप स्वयं उपदेश आदि आचार्य का काम करता है वह शिष्य न शिष्य रहता है और न आचार्य ही कहलाता है।"

मुनिराज के उक्त वचन सुनकर देव और राजा परम आश्चर्य को प्राप्त हुए। वे सोचने लगे—"अहो! तप का कैसा अचिन्त्य माहात्म्य है कि ऐसे महासाधु भी अपने गुरू को इतना सम्मान देते हैं!"

सभी लोग मुनिराज के साथ गुरू के पास पहुँचे। गुरूदेव की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं और भक्ति से उन्हें नमस्कार किया। वे मुनि भी गुरू की वन्दना करके उनके निकट विनय से बैठ गये। तब देव और विद्युत्केश राजा ने हाथ जोड़कर विनयपूर्वक गुरू से धर्म का स्वरूप पूछा। गुरू ने दयामयी परमधर्म का उपदेश दिया। अनन्तर देव और विद्युत्केश राजा दोनों ने मुनिराज से अपने पूर्वभवों को पूछा। मुनिराज के मुख से भव-भवांतरों को सुनकर राजा विद्युत्केश संसार के भोगों से विरक्त हो गये अतः उन्होंने अपने पुत्र सुकेश को राज्यभार सौंपकर उन मुनिनाथ के पास दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली।

महोदधि कुमार देव भी पाप से भीरुमना होता हुआ धर्म में अतिशय प्रीति को प्राप्त हुआ। पुनः पुनः मुनियों को नमस्कार करके वह अपने स्थान को चला गया।

सच है धर्म का माहात्म्य अचिंत्य है। देखो, एक चंचल प्राणी बन्दर मरणासन्न स्थिति में गुरूमुख से धर्म को श्रवण कर और महामन्त्र को प्राप्त कर उत्तमदेव हो गया। पुनः गुरू प्रसाद से सदा के लिये धर्म में अनुरागी बन गया है।

एसो पंचणमोयारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं।।

अर्थ—यह पंच नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और सब मंगलों में पहला मंगल है।

णमोकार महामंत्र पूजा

रचयित्री-गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी

—स्थापना (गीता छंद) —

अनुपम अनादि अनंत है, यह मंत्रराज महान है।
सब मंगलों में प्रथम मंगल, करत अघ की हान है।।
अर्हंत सिद्धाचार्य पाठक, साधुओं की वंदना।
इन शब्दमय परब्रह्म को, थापूँ करूँ नित अर्चना।।१।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणं।

—अथाष्टक (भुजंगप्रयात छंद) —

महातीर्थ गंगानदी नीर लाऊँ।
महामंत्र की नित्य पूजा रचाऊँ।।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।१।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कपूरादिचंदन महागंध लाके।
परं शब्द ब्रह्मा की पूजा रचाके।।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।२।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पयोसिंधु के फेन सम अक्षतों को।
लिया थाल में पुँज से पूजने को।।

णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।३।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जुही कुंद अरविंद मंदार माला।
चढ़ाऊँ तुम्हें काम को मार डाला।।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।४।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीतिस्वाहा।

कलाकंद लड्डू इमरती बनाऊँ।
तुम्हें पूजते भूख व्याधी नशाऊँ।।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।५।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शिखा दीप की ज्योति विस्तारती है।
महामोह अंधेर संहारती है।।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।६।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीत्िस्वाहा।

सुगंधी बढ़े धूप खेते अगनि में।
सभी कर्म की भस्म हो एक क्षण में।।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।७।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अनंनास अंगूर अमरूद लाया।
महामोक्षसंपत्ति हेतू चढ़ाया।।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।८।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

उदक गंध आदि मिला अर्घ्य लाया।
महामंत्र नवकार को मैं चढ़ाया।।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं।
महाघोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।९।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

—दोहा—

शांतीधारा मैं करूँ, तिहुँ जग शांती हेत।
भव-भव आतप शांत हो, पूजूँ भक्ति समेत।।१०।।

शांतये शांतिधारा।

वकुल मल्लिका पुष्प ले, पूजूँ मंत्र महान।
पुष्पांजलि से पूजते, सकलसौख्य वरदान।।११।।

दिव्य पुष्पांजलिः।

जाप्य—**ॐ ह्रां णमो अरिहंताणं। ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं। ॐ ह्रूँ णमो आइरियाणं। ॐ ह्रौं णमो उवज्झायाणं। ॐ ह्रः णमो लोए सव्वसाहूणं।**

(१०८ सुगंधित श्वेत पुष्पों से या लवंग अथवा पीले तंदुलों से जाप्य करना)

जयमाला

—सोरठा—

पंचपरमगुरुदेव, नमूँ नमूँ नत शीश मैं।
करो अमंगल छेव, गाऊँ तुम गुणमालिका।।१।।

चाल—हे दीनबंधु.....

जैवंत महामंत्र मूर्तिमंत धरा में।
जैवंत परमब्रह्म शब्दब्रह्म धरा में।।
जैवंत सर्वमंगलों में मंगलीक हो।
जैवंत सर्वलोक में तुम सर्वश्रेष्ठ हो।।१।।

त्रैलोक्य में हो एक तुम्हीं शरण हमारे।
माँ शारदा भी नित्य ही तुम कीर्ति उचारे।।

विघ्नों का नाश होता है तुम नाम जाप से।
सम्पूर्ण उपद्रव नशे हैं तुम प्रताप से।।२।।

छ्यालीस सुगुण को धरें अरिहंत जिनेशा।
सब दोष अट्ठारह से रहित त्रिजग महेशा।।
ये घातिया को घात के परमात्मा हुए।
सर्वज्ञ वीतराग औ निर्दोष गुरु हुए।।३।।

जो अष्ट कर्म नाश के ही सिद्ध हुए हैं।
वे अष्ट गुणों से सदा विशिष्ट हुए हैं।।
लोकाग्र में हैं राजते वे सिद्ध अनन्ता।
सर्वार्थसिद्धि देते हैं वे सिद्ध महन्ता।।४।।

छत्तीस गुण को धारते आचार्य हमारे।
चउसंघ के नायक हमें भवसिंधु से तारें।।
पच्चीस गुणों युक्त उपाध्याय कहाते।
भव्यों को मोक्षमार्ग का उपदेश पढ़ाते।।५।।

जो साधु अट्ठाईस मूलगुण को धारते।
वे आत्म साधना से साधु नाम धारते।।
ये पंचपरमदेव भूतकाल में हुए।
होते हैं वर्तमान में भी पंचगुरु ये।।६।।

होंगे भविष्य काल में भी सुगुरु अनन्ते।
ये तीन लोक तीन काल के हैं अनन्ते।।
इन सब अनन्तानन्त की मैं वंदना करूँ।
शिवपथ के विघ्न पर्वतों की खण्डना करूँ।।७।।

इक ओर तराजू पे अखिल गुण को चढ़ाऊँ।
इक ओर महामंत्र अक्षरों को धराऊँ।।
इस मंत्र के पलड़े को उठा ना सके कोई।
महिमा अनन्त यह धरे ना इस सदृश कोई।।८।।

इस मंत्र के प्रभाव श्वान देव हो गया।
इस मंत्र से अनन्त का उद्धार हो गया।।
इस मंत्र की महिमा को कोई गा नहीं सके।
इसमें अनन्त शक्ति पार पा नहीं सके।।९।।

पाँचों पदों से युक्त मंत्र सारभूत है।
पैंतीस अक्षरों से मंत्र परमपूत है।।
पैंतीस अक्षरों के जो पैंतीस व्रत करें।
उपवास या एकाशना से सौख्य को भरें।।१०।।

तिथि सप्तमी के सात पंचमी के पाँच हैं।
चौदश के चौदह नवमी के भी नव विख्यात हैं।।
इस विध से महामंत्र की आराधना करें।
वे मुक्ति वल्लभापती निज कामना वरें।।११।।

—दोहा—

यह विष को अमृत करे, भव-भव पाप विदूर।
पूर्ण ''ज्ञानमति'' हेतु मैं, जजूँ भरो सुख पूर।।१२।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधन-पंचनमस्कारमंत्राय जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतये शांतिधारा। दिव्य पुष्पांजलिः।

—सोरठा—

मंत्रराज सुखकार, आतम अनुभव देत है।
जो पूजें रुचिधार, स्वर्ग मोक्ष के सुख लहें।।१३।।

।।इत्याशीर्वादः।।

णमोकार चालीसा

–दोहा–

वंदूँ श्री अरिहंत पद, सिद्ध नाम सुखकार।
सूरी पाठक साधुगण, हैं जग के आधार।।१।।

इन पाँचों परमेष्ठि से, सहित मूल यह मंत्र।
अपराजित व अनादि है, णमोकार शुभ मंत्र।।२।।

णमोकार महामंत्र को, नमन करूँ शतबार।
चालीसा पढ़कर लहूँ, स्वात्मधाम साकार।।३।।

–चौपाई–

हो जैवन्त अनादिमंत्रम्, णमोकार अपराजित मंत्रम् ।।१।।
पंच पदों से युक्त सुयंत्रम्, सर्वमनोरथ सिद्धि सुतंत्रम्।।२।।
पैंतिस अक्षर माने इसमें, अट्ठावन मात्राएँ भी हैं।।३।।
अतिशयकारी मंत्र जगत में, सब मंगल में कहा प्रथम है।।४।।
जिसने इसका ध्यान लगाया, मनमन्दिर में इसे बिठाया।।५।।
उसका बेड़ा पार हो गया, भवदधि से उद्धार हो गया।।६।।
अंजन बना निरन्जन क्षण में, शूली बदली सिंहासन में।।७।।
नाग बना फूलों की माला, हो गई शीतल अग्नी ज्वाला।।८।।
जीवन्धर से इसी मंत्र को, सुना श्वान ने मरणासन्न हो।।९।।
शांतभाव से काया तजकर, पाया पद यक्षेन्द्र हुआ तब।।१०।।
एक बैल ने मंत्र सुना था, राजघराने में जन्मा था।११।।
जातिस्मरण हुआ जब उसको, उसने खोजा उपकारी को।।१२।।
पद्मरुची को गले लगाया, आगे मैत्री भाव निभाया।।१३।।
कालान्तर में वही पद्मरुचि, राम बने तब बहुत धर्मरुचि।।१४।।
बैल बना सुग्रीव बन्धुवर! दोनों के सम्बन्ध मित्रवर।।१५।।

रामायण की सत्य कथा है, णमोकार से मिटी व्यथा है।।१६।।
ऐसी ही कितनी घटनाएँ, नए पुराने ग्रन्थ बताएँ।।१७।।
इसीलिए इस मंत्र की महिमा, कही सभी ने इसकी गरिमा।।१८।।
हो अपवित्र पवित्र दशा में, सदा करें संस्मरण हृदय में।।१९।।
जपें शुद्धतन से जो माला, वे पाते हैं सौख्य निराला।।२०।।
अन्तर्मन पावन होता है, बाहर का अघमल धोता है।।२१।।
णमोकार के पैंतिस व्रत हैं, श्रावक करते श्रद्धायुत हैं।।२२।।
हर घर के दरवाजे पर तुम, महामंत्र को लिखो जैनगण।।२३।।
जैनी संस्कृति दर्शाएगा, सुख समृद्धि भी दिलवाएगा।।२४।।
एक तराजू के पलड़े पर, सारे गुण भी रख देने पर।।२५।।
दूजा पलड़ा मंत्र सहित जो, उठा न पाए कोई उसको।।२६।।
उठते चलते सभी क्षणों में, जंगल पर्वत या महलों में।।२७।।
महामंत्र को कभी न छोड़ो, सदा इसी से नाता जोड़ो।।२८।।
देखो! इक सुभौम चक्री था, उसने मन में इसे जपा था।।२९।।
देव मार नहिं पाया उसको, तब छल युक्ति बताई नृप को।।३०।।
उसके चंगुल में फंस करके, लिखा मंत्र राजा ने जल में।।३१।।
ज्यों ही उस पर कदम रख दिया, देव की शक्ती प्रगट कर दिया।।३२।।
देव ने उसको मार गिराया, नरक धरा को नृप ने पाया।।३३।।
मंत्र का यह अपमान कथानक, सचमुच ही है हृदय विदारक।।३४।।
भावों से भी न अविनय करना, सदा मंत्र पर श्रद्धा करना।।३५।।
इसके लेखन में भी फल है, हाथ नेत्र हो जाएं सफल है।।३६।।
णमोकार की बैंक खुली है, ज्ञानमती प्रेरणा मिली है।।३७।।
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में, मंत्रों का व्यापक संग्रह है।।३८।।
इसकी किरण प्रभा से जग में, फैले सुख शांती जन-जन में।।३९।।
मन-वच-तन से इसे नमन है, महामंत्र का करूं स्मरण मैं।।४०।।

-शंभु छंद-

यह महामंत्र का चालीसा, जो चालिस दिन तक पढ़ते हैं।
ॐ अथवा असिआउसा मंत्र, या पूर्ण मंत्र जो जपते हैं।।
ॐकारमयी दिव्यध्वनि के, वे इक दिन स्वामी बनते हैं।
परमेष्ठी पद को पाकर वे, खुद णमोकारमय बनते हैं।।१।।
पच्चिस सौ बाइस वीर अब्द, आश्विन शुक्ला एकम तिथि में।
रच दिया ज्ञानमति गणिनी की, शिष्या "चन्दनामती" मैंने।।
मैं भी परमेष्ठी पद पाऊँ, प्रभु कब ऐसा दिन आएगा।
जब मेरा मन अन्तर्मन में, रमकर पावन बन जाएगा।।२।।

अथ वज्रपंजरस्तोत्रम्

परमेष्ठिनमस्कारं, सारं नवपदात्मकम्।
आत्मरक्षाकरं वज्र-पंजराख्यं स्मराम्यहम्।।१।।
ॐ णमो अरहंताणं, शिरस्कन्धरसं स्थितम्।
ॐ णमो सिद्धाणं, मुखे मुखपटाम्बरम्।।२।।
ॐ णमो आइरियाणं, अंगरक्षातिशायिनी।
ॐ णमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तोयोर्दृढम्।।३।।
ॐ णमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पदयोः शुभे।
एसो पंच णमोयारो, शिला वज्रमयी तले।।४।।
सव्वपावप्पणासणो, वप्रो वज्रमयो बहिः।
मंगलाणं च सव्वेसिं, खदिरांगारखातिका।।५।।
स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवइ मंगलम्।
वप्रोपरि वज्रमयं, पिधानं देहरक्षणे।।६।।
महाप्रभावरक्षेयं, क्षुद्रोपद्रवनाशिनी।
परमेष्ठीपदोद्भूता, कथिता पूर्वसूरिभिः।।७।।
यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठिपदैः सदा।
तस्य न स्याद् भयं व्याधि-राधिश्चापि कदाचन।।८।।

भजन

-आर्यिका चंदनामती

तर्ज-तन डोले.....

णमोकार बोलो, फिर आँख खोलो, सब कार्य सिद्ध हो जाएँगे,
नर जन्म सफल हो जाएगा।।

प्रातःकाल उषा बेला में, बोलो मंगल वाणी।
हर घर में खुशियाँ छाएँगी, होगी नई दिवाली।। रे भाई.....
प्रभु नाम बोलो, निजधाम खोलो, सब कार्य सिद्ध हो जाएँगे,
नर जन्म सफल हो जाएगा।।१।।

परमब्रह्म परमेष्ठी की शक्ती, यह मंत्र बताता।
णमोकार के उच्चारण से, अन्तर्मन जग जाता।। रे भाई.....
नौ बार बोलो, सौ बार बोलो, सब कार्य सिद्ध हो जाएँगे,
नर जन्म सफल हो जाएगा।।२।।

ॐ शब्द का ध्यान "चन्दना" मन को स्वस्थ बनाता।
इसके ध्यान से मानव इक दिन, परमेष्ठी पद पाता।। रे भाई....
नौ बार बोलो, सौ बार बोलो, सब कार्य सिद्ध हो जाएँगे,
नर जन्म सफल हो जाएगा।।३।।

भजन

-आर्यिका चंदनामती

–शिखरिणी छंद–

णमो अरिहंताणं, नमन है अरिहंत प्रभु को।
णमो सिद्धाणं में, नमन कर लूँ सिद्ध प्रभु को।।
णमो आइरियाणं, नमन है आचार्य गुरु को।
णमो उवज्झायाणं, नमन है उपाध्याय गुरु को।।।१।।
णमो लोए सव्व-साहूणं पद बताता।
नमन जग के सब, साधुओं को करूँ जो हैं त्राता।।
परमपद में स्थित, कहें पाँच परमेष्ठि इनको।
नमन इनको करके, लहूँ इक दिन मुक्तिपद को।।२।।
सभी के पापों को, शमन करता मंत्र यह ही।
तभी सब मंगल में, प्रथम माना मंत्र यह ही।।
जपें जो भी इसको, वचन मन कर शुद्ध प्रणति।
लहें वे इच्छित फल, हृदय नत हो 'चन्दनामति'।।३।।

आरती

-आर्यिका चंदनामती

तर्ज–माई रे माई.....

णमोकार महामंत्रराज की आरति करने आये।
पाँचों परमेष्ठी का वन्दन, पुण्यधाम दिलवाये।।
जय हो मंत्रराज की जय, जय हो णमोकार की जय।
पंचपदी णमोकार मंत्र में, पाँचों परमेष्ठी हैं।
अर्हत् सिद्धाचार्य उपाध्याय साधु उन्हें कहते हैं।।
परमोत्तम पद में स्थित ये, परमेष्ठी कहलाये।
पाँचों परमेष्ठी का वन्दन, पुण्यधाम दिलवाये।।
जय हो मंत्रराज की जय, जय हो णमोकार की जय।।१।।
णमोकार महामंत्र में पैंतिस अक्षर माने जाते।
अट्ठावन मात्रा स्वर–व्यंजन चौंसठ वर्ण हैं आते।।
द्वादशांग का बीजाक्षर यह, श्रुत का सार बताये।
पाँचों परमेष्ठी का वन्दन, पुण्यधाम दिलवाये।।
जय हो मंत्रराज की जय, जय हो णमोकार की जय।।२।।
चौरासी लख मंत्रों का यह, मूल स्रोत कहलाता।
इसीलिए 'चन्दनामती', मातृका मंत्र कहलाता।।
घृत दीपक से आरति करके, आरत क्लेश नशाएँ।
पाँचों परमेष्ठी का वन्दन, पुण्यधाम दिलवाये।।
जय हो मंत्रराज की जय, जय हो णमोकार की जय।।३।।